Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Peer Reviewed, Refereed)

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ मन्दारमरन्दचम्पू में दोष निरूपण

प्रियंका जैन

सारांश

पण्डितराजोत्तर युग में आचार्य श्री कृष्ण कवि हुए जिन्होनें मन्दारमरन्दचम्पू नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। यह एक चम्पू काव्य हैं क्योंकि इसमें गद्य एवं पद्य दोनों में लक्षण एवं लक्ष्य प्रस्तुत किए गए है साथ ही यह लक्षण ग्रन्थ भी है क्योंकि इसमे नाट्यशास्त्र तथा काव्य शास्त्र कें सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। यह विशेषता इसको साहित्यदर्पण जैसे काव्यशास्त्र ग्रंन्थो की पक्ति मे आबद्ध करती है। इसमे छन्द शास्त्र का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। तथा प्रस्तुत विषयों में कवि ने अपनी ओर से नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थों को सर्वांगपूर्ण बनाया है। श्री कृष्ण ने काव्य स्वरूप, प्रयोजन, शब्द शक्तियां, ध्वनि, अलंकार, गुण तथा दोषों की चर्चा की है। श्री कृष्ण ने दोषों का द्विधा विभाजन किया है–शब्दगत एवं अर्थगत। तथा शब्दगत का पुनः पद दोष, वाक्य दोष के रूप में द्विधा विभाजन किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में श्री कृष्ण द्वारा निरूपित दोष वर्णन दृष्टव्य है।

'दोष' की उपस्थिति हेय होती है, चाहे वो मनुष्य में हो या काव्य रचना में। संस्कृत साहित्य शास्त्र में प्रायः सभी आचार्यो ने काव्य में दोषों को हेय दृष्टि से देखा है। काव्यशास्त्र के प्रथमाचार्य भामह दोषों की हेयता के विषय में कहते हैं कि काव्य में एक भी दोषयुक्त पद का समावेश नहीं होना चाहिए।[1] दण्डी भी भामह से सहमत हैं, साथ ही उदाहरण से स्पष्ट करते हैं कि जैसे एक कुष्ठ से ही सुन्दर शरीर भी अस्पृश्य या हेय हो जाता है, उसी प्रकार एक ही दोष से काव्य अप्रशंसनीय हो जाता है।[2] आचार्य वामन भी दोष रहित काव्य को ग्राह्य स्वीकार नहीं करते हैं।[3] आचार्य रूद्रट भी उत्तम एवं मध्यम काव्य के लिए निर्दोषता आवश्यक मानते हैं।[4] 2आचार्य भोज काव्य–लक्षण में ही निर्दोषता का निरूपण कर अपना निश्चित मत प्रस्तुत करते हैं तथा उनके अनुसार निर्दुष्ट रचना करने वाला कवि ही आनन्द और यश का भागी होता है।[5] आचार्य मम्मट काव्य स्वरूप के निर्धारण करते हुए दोष त्याग को अनिवार्य मानते है।[6] इसलिए उनकी दृष्टि में कोई भी दोष नित्य हो या अनित्य साक्षात् रस का अपकर्षक हो अथवा परम्परया, दोष के रूप में विद्यमान रहने पर त्याज्य ही हैं।

किन्तु कुछ आचार्य हैं जो अपेक्षाकृत उदार विचार रखते हैं। आचार्य भरत ने नाटकों के सम्बन्ध में दोषों पर विचार करते हुए कहा है कि संसार की कोई भी वस्तु दोष–रहित नहीं है, अतः विद्वानों द्वारा अत्यधिक विचार–योग्य नहीं है।[7]

साहित्यदर्पणकार दोष सामान्य की परिभाषा करते हुए कहते है–'रस का अपकर्ष करने वाले तत्व दोष कहलाते हैं।[8] वे रसापकर्षक तत्व भी दो प्रकार के हो सकते हैं–प्रथम वे जो कानापन, लगंडापन आदि की भाँति देह का अपकर्ष करते हुए काव्यार्थ का (रस) अपकर्ष करते है, इस प्रकार के दोष श्रुति दुष्टत्व आदि हैं, तथा कुछ मूर्खता आदि की भाँति साक्षात् रस का अपकर्ष करते हैं। विश्वनाथ के अनुसार ये दोनों प्रकार के ही दोष काव्यार्थ की प्रतीति में विलम्ब कर सकते है, उसे अचमत्कृत कर सकते है, इस प्रकार वे उत्कर्ष के विनाशक अथवा कम करने वाले हैं किन्तु

Research Scholar, Department of Sanskrit, Vansthali Vidyapeetha, P.O. Banasthali Vidyapith, Rajasthan - 304022 6360231076

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

प्रतीति को विघटित नहीं करते हैं, अतः काव्यत्व के विघातक नहीं कहे जा सकते। इसीलिए विश्वनाथ ने दोष लक्षण में उन्हें रस प्रतीति में अपकर्षक ही माना था, विघातक नहीं। इस प्रकार विश्वनाथ के मत में दोष रहते हुए भी कोई रचना काव्य कहीं जा सकती है, भले ही वह अधिक उच्च कोटि की न मानी जाये।[9]

इस प्रकार द्विविध प्रकार की दृष्टि प्राप्त होती है। 3 दोष स्वरूपः—आचार्य भरत ने दोष का कोई सामान्य लक्षण नहीं दिया, किन्तु गुणों को दोषों का विपयर्य कहा है। इनके अनुसार काव्य—दोष दस प्रकार के हैं —

'गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं भिन्नार्थमेकार्थमभिलुप्तार्थम्।
न्यायादपेतं विषमं विसन्धि शब्दच्युतं वै दश काव्यदोषाः।।[10]

उपर्युक्त दस—दोषों के लक्षण भरत मुनि ने प्रस्तुत किए हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि वाचक के सौन्दर्य और वाच्य की प्रतीति के विघातक तत्व दोष हैं।

पूर्ववर्ती आलंकारिकों में भामह ने दोषों का अपेक्षाकृत विस्तृत विवेचन किया हैं। उन्होंने दोष सामान्य की परिभाषा तो नहीं दी किन्तु दोषों की चर्चा दो स्थानों पर की हैं। प्रथमाध्याय में वक्रोक्ति निरूपण के अन्तर्गत दस दोषों का वर्णन हैं—नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्तिमत्, गूढशब्दाभिधान, श्रुतिदुष्ट, अर्थदुष्ट, कल्पनादुष्ट तथा श्रुतिदुष्ट।[11]
उन्होनें इन दोषों के परिहार पर भी विचार किया है। इनके अतिरिक्त चतुर्थ अध्याय में अपार्थादि दस दोषों का निरूपण है —

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं संसशयमपक्रमम्।
शब्दहीनं यति भ्रष्टं भिन्नवृतं विसन्धि च।
देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च।
प्रतिज्ञाहेतुदृष्टान्तहीनं दुष्टं च नेष्यते ।।[12]

इन दोनों प्रकार के दोषों के अध्ययन से कहा जा सकता है कि भामह की दृष्टि मे काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उपस्थित करने वाले तत्व दोष है। चूंकि भामह 4काव्यात्मक रूप रस एवं ध्वनि के पक्षधर नहीं थे, अतः काव्य के बाहय रूप को कलंकित करने वाले तत्व ही दोष हैं।
आचार्य दण्डी भी दोष की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत नहीं करते, किन्तु वे दोषों को काव्य में विपत्ति के हेतु बताते है,[13] तथा विद्वानों को आगाह करते हैं कि उन्हें दस दोषों से सदैव बचना चाहिए।[14] उनके दस दोष निम्न हैं :—

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं संसशयपराक्रमम्।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृतं विसंधिकम्।[15]

इनकी दृष्टि में इष्टार्थ के प्राप्त होने में बाधक तत्व ही दोष कहलाए।

दोष की स्पष्ट परिभाषा सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने दी । उनके अनुसार 'जो उद्वेगजनक है वही दोष है।[16] उद्वेगजनक से तात्पर्य यहाँ पाठक की मानसिकतातन्मयता को भंग करने वाले तत्वों से है। इन्होंने इष्ट व्याद्यातकारित्व आदि ग्यारह दोष बताए है।[17]

आचार्यवामन कवि की दृष्टि से दोष की परिभाषित करते हैं—काव्य सौन्दर्य के आक्षेप अर्थात् विनाशक तत्व दोष है।[18] साथ ही वे दोषों को गुणों के विपरीत स्वभाव वाले बताते हैं।[19]

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

इन्होंने दोष के दो प्रकार माने हैं–शब्दगत दोष एवं अर्थगत दोष । तथा इनके चार उपविभाग कर दोषों की संख्या बीस कही है।

(1) पददोष–असाधु, कष्ट, ग्राम्य, अप्रतीति, अनर्थक

(2) पदार्थ दोष–अन्यार्थ, नेयार्थ, गूढार्थ, अश्लील एवं क्लिष्ट

(3) वाक्य दोष–भिन्न यति, भ्रष्ट तथा विसंधि।

(4) वाक्यार्थ दोष–व्यर्थ, एकार्थ, संदिग्ध, अप्रयुक्त, अपक्रम, अलोक, विद्याविरूद्व

आचार्य रूद्रट द्वारा प्रतिपादित दोष विवेचन से ज्ञात होता है कि वे वामन के समर्थक न होकर भरत मुनि के ही अनुयायी है तथा वाच्यार्थ की प्रतीति में व्यवधान उत्पन्न करने वाले तत्वों को दोष शब्द से अभिहित करते हैं। 5 आचार्य आनन्दवर्धन की विचारधारा ने संस्कृत काव्यशास्त्र की दिशा परिवर्तित कर दी। पूर्व में शब्दार्थ सर्वस्व था तथा गुण, रीति, वृति एवं दोष सभी शब्दार्थ से ही सम्बन्धित किन्तु आनन्दवर्धन के अनन्तर काव्य सम्बन्धित मान्यताओं में बदलाव हुआ। ध्वनि की स्थापना के पश्चात् प्रायः सभी तत्व रस से सम्बन्धित हो गए। तथा काव्य–सौन्दर्य रस के विघातक तत्व ही दोष कहलाने लगे।

यद्यपि आनन्दवर्धनाचार्य ने काव्य के उपादान तत्व के रूप से दोषों की परिचर्चा नहीं कि तथापि काव्यात्मा रस ध्वनि की व्यजंना में बाधा पहुँचाने वाले कारणों की विस्तृत रूप से विवेचना की है तथा उनसे बचाव किस रूप में कर सकते हैं, इसका उल्लेख किया है।[20]

आचार्य ने औचित्य से ही काव्य शोभा बताई है, अतः अनौचित्य ही सबसे बड़ा दोष है।[21]

आनन्दवर्धन के पश्चात् दोष की परिभाषाएँ भी रसोन्मुखी हो गई तथा रस प्रतीति के विघातक तत्व रस दोषों की चर्चा की जाने लगी। आचार्य मम्मट दोष का सामान्य लक्षण करते हैं। मुख्यार्थ का अपकर्ष जिससे होता है उसको दोष कहते हैं। मुख्यार्थ पद का अभिप्राय यहाँ वाच्यार्थ नहीं है, रस हैं और रस मुख्य अर्थ होने से रसापकर्षक जनक कारण दोष कहलाते हैं ।[22] रस का आश्रय होने से वाच्य का अपकर्षकारक भी दोष कहलाते हैं तथा शब्दादि दोनों के सहायक होते है इसलिए उनमें भी दोष रहते है। इस प्रकार रस दोष, अर्थ दोष एवं पद दोष काव्य सौन्दर्य के विघातक हैं।

पण्डितराजोत्तर युग में आचार्य श्री कृष्ण कवि हुए जिन्होनें मन्दारमरन्दचम्पू नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। यह एक चम्पू काव्य हैं क्योंकि इसमें गद्य एवं पद्य दोनों में लक्षण एवं लक्ष्य प्रस्तुत किए गए है साथ ही यह लक्षण ग्रन्थ भी है क्योंकि इसमे नाट्यशास्त्र तथा काव्य शास्त्र कें सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। यह विशेषत 7 इसको साहित्यदर्पण जैसे काव्यशास्त्र ग्रंन्थो की पक्ति मे आबद्ध करती है। इसमे छन्द शास्त्र का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। तथा प्रस्तुत विषयों में कवि ने अपनी ओर से नवीन उद्भावनाएँ प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थों को सर्वांगपूर्ण बनाया है। श्री कृष्ण ने काव्य स्वरूप, प्रयोजन, शब्द शक्तियां, ध्वनि, इअलंकार, गुण तथा दोषों की चर्चा की है। प्रस्तुत शोध पत्र में श्री कृष्ण द्वारा निरूपित दोष वर्णन दृष्टव्य है।

मन्दारमरन्दचम्पू में दोष–निरूपण

काव्य–दोषों की विवेचन परम्परा प्रारम्भ से ही प्राप्त होती है। इसी परम्परा में श्री कृष्ण कवि ने भी दोषों के स्वरूप को उदाहरण सहित स्पष्ट किया। दोष सामान्य की परिभाषा श्रीकृष्ण के अनुसार है–

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

'रसापकर्षहेतुत्वं दोषत्वं परिकीर्तितम् ।'[23]

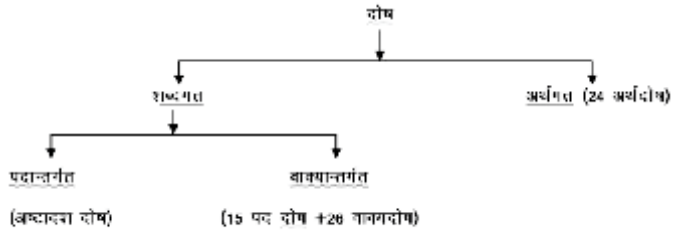

अर्थात् रस की अनुभूति के बाधक तत्व दोष हैं। श्री कृष्ण ने काव्य लक्षण में 'दोषवर्जितों' को स्थान दिया है, अतः उनकी दृष्टि में दोषयुक्त काव्य हेय है। इन्होनें साक्षात् रस के अपकर्ष तत्वों को दोष कहा है किन्तु रस का आश्रय वाच्य (अर्थ) रस के साथ चमत्कारी वाच्य का अपकर्षकारक भी दोष कहलाता हैं शब्दादि रस तथा वाच्यार्थ दोनों के बोधन में सहायक होते हैं इसलिए उनमें भी दोष रहता है। श्री कृष्ण ने दोषों का द्विधा विभाजन किया है–शब्दगत एवं अर्थगत। तथा इनका पुनः पद दोष, वाक्य दोष आदि विभाजन किया है।[24] निम्न रेखाचित्र से भेदों को भली भाँति समझा जा सकता है –

श्री कृष्ण पददोष के अन्तर्गत ये षोडश दोष परिगणित करते है–श्रुतिकटु, भ्रष्टसंस्कार, अप्रयुक्त, असमर्थ, निहतार्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाचक, अश्लील, सन्दिग्ध, अप्रतीत, ग्राम्य, गूढार्थ, नेयार्थ, क्लिष्ट, अप्रयोजक, अविमृष्टविधेयांश, विरूद्वमतिकृत ।इन सभी दोषों को लक्षणोदाहरण निरूपण किया है।[25]

पद दोषान्तर्गत निरूपित अष्टादश दोषों में से च्युतसंस्कार, असर्मथ और निरर्थक दोषों को छोड़कर श्रुतिकट्वादि पन्द्रह दोष वाक्य में भी पायें जाते है।[26]

वाक्य दोषः– श्रीकृष्ण कवि के अनुसार वाक्य में छब्बीस दोष होते हैं– यतिभंग, अनुक्तवाच्य, समाप्तपुनरातकम्, भग्नछन्द, संकीर्ण, अपूर्ण, वाक्यगर्भित, अर्थान्तरस्थैकपद, विसंधि, पुनरूक्तिमत्, अशरीर , अधिकपद, प्रसिद्धिविधुर, अपदस्थसमास, अमतविसर्ग अपदस्थपद, भग्नप्रकम, गर्हित, अभवन्मतयोग, अवर्ण, अमनपदार्थ,पतत्प्रकर्ष।[27] इन सभी दोषों का लक्षणोदाहरण निरूपण किया है।

अर्थ दोषः– श्रीकृष्ण कवि के अनुसार अर्थ में चौबीस दोष होते हैं अपुष्ट,कष्ट, व्याघात, पुनरूक्त , अधिकोपमा, अपार्थ, दुष्क्रम, ग्राम्य, संदिग्ध, नियमच्युत, साकांक्ष , पुरूष, अश्लील,व्यर्थ, भिन्न, असमोपम, अनिरूप्य,अतिमात्र, निर्हेतु, अनवीकृत, अप्रसिद्धोपमा, हीनोपमा, सहचरचयुत , विरूद्ध ।[28] इन सभी दोषों का लक्षणोदाहरण निरूपण किया है।

श्री कृष्ण कवि ने काव्यदोष प्रकरणम् के अन्तर्गत पददोष, वाक्यदोष एवं अर्थदोषों का विवेचन किया था। रस दोषों का निरूपण रसदोषप्रकरण के अन्तर्गत किया है। चूंकि उन्होंने दोष रस के अपकर्षक तत्वों को ही कहा है, अतः रस–दोषों का वर्णन मुख्य हैं। श्री कृष्ण कवि ने त्रयोदश रस दोषों का उल्लेख किया है –

व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता
कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभाव विभावयोः।।8

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

प्रतिकूल विभावस्य ग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः
अकाण्डप्रथनं चैव रसच्छेदोअंगविस्तृति
तथाड्गयननुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः।
तथा नड्गाभिधानं च रसदोषास्त्रयोदश ।।[29]

इस प्रकार श्रीकृष्ण कवि ने विस्तारपूर्वक दोषों का उल्लेख किया है इन पर ध्वनिवादी आचार्यों का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित हो रहा है। श्शोध पत्र को विस्तृत ना करते` हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देती हूँ।

सन्दर्भ–सूची

1 सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत् । काव्यालंकार – 1/11,
2 तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथन्चन
3 स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम् । काव्यादर्श – 1/17
काव्यं ग्राहयमलंकारात्। स खलु दोषगुणालंकारहानादाभ्याम्। काव्यालंकार सूत्र 1/1/3
4 यत्पुनरनलंकार निर्दोषं चेति तन्मध्यमम्।।रूद्रट – काव्यालंकार 6/40
5 निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्'
रसान्वितं कविः कुर्वन्प्रीतिकीर्ति न विन्दति।। सरस्वतीकण्ठाभरण 1/156
6 तददोषौ शब्दाथौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि – काव्यप्रकाश 1/4
7 भरतमुनि,नाट्यशास्त्र
8 (क) दोषास्तस्यापकर्षकाः। साहित्यदर्पण 1/4
(ख) रसापकर्षकाः दोषाः । साहित्यदर्पण 7/1
9 डॉ ब्रहममित्र अवस्थी, महिमभट्ट कृत काव्यदोष विवेचन पृ. सं. 34
10 भरतमुनि, नाट्यशास्त्र 16.88
11 भामह, काव्यालंकार 1/37 9
12 भामह, काव्यालंकार 4/1–2
13 दण्डी, काव्यादर्शः ' दोष विपत्तये तत्र गुणाः संपत्तये यथा।। 3/114
14 दण्डी, काव्यादर्शः ' इति दोषा दशैवैते वर्ज्याः काव्येषु सूरिभिः। 3/126
15 दण्डी, काव्यादर्शः ' 3/125
16 अग्निपुराणकार, उद्वेगजनको दोष :– अग्नि पुराण 347/1
17 अग्निपुराण 347/21–23
18 काव्यशरीरे स्थापिते काव्यसौन्दर्याक्षेपहेतवस्त्यागाय विज्ञातव्या इति
दोषंदर्शनं नामाधिकरणमारभ्यते। – काव्यालंकार सूत्रवृत्ति 2.1 की प्रस्तावना
19 गुणविपर्ययात्मानो दोषा :– वहीं 2.1
20 आनन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोकः 3.18–19
21 अनौचित्यादृते नान्यद्रसभड्गस्य कारणम्
प्रसिद्वौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।। ध्वन्यालोक पृ. 259

Vol. 10 No. 1-2, March-Sep. 2019
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903
Impact Factor 3.765

22 मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यतदाश्रयाद् वाच्यः उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः ।। काव्यप्रकाश 7/4927 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं.–168

23 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं. – 166

24 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं. – 16628 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं. – 172

25 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं. – 166

26 ,, ,, ,, – 168

27 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं. – 168

28 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं– 172

29 मन्दारमरन्दचम्पू पृ. सं– 18310

सन्दर्भ–पुस्तकें

1 त्रिपाठी, डॉ. घनश्याम तथा झा, तारिणीश , 2007, हिन्दी साहित्य सम्मेलन

2 शास्त्री, श्री निवास(व्या.) काव्यप्रकाश, 1960,सहित्य भंडार,मेरठ

3 शिरोमणी,आर्चाय विश्वेश्वर (व्या.)काव्यप्रकाश, 2009,ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी

4 पाठक, डॉ.जमुना(व्या.), दण्डी, काव्यादर्श,चौकम्बा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी

5 शर्मा, देवेन्द्रनाथ (भा.) भामह, काव्यालंकार, 2019 राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, बिहार

6 चौधरी, डॉ. सत्यदेव(व्या.), रूद्रट,काव्यालंकार, 1965, वासुदेवप्रकाशन ,दिल्ली

7 शुक्ल, श्री बाबूलाल(व्या.), भरत मुनि,,नाट्यशास्त्र , प्रथम व द्वितीय भाग सं.2056,2057 चौकम्बा संस्कृत संस्थान ,वाराणसी

8 अवस्थी,डाँ ब्रहममित्र, महिमभट्ट कृत काव्यदोष विवेचन, इन्दुप्रकाशन, दिल्ली

9 मिश्र, कामेश्वरनाथ ,(व्या.), भोज,सरस्वतीकण्ठाभरणप्रथम व द्वितीय भाग चौकम्बा पिब्लशर्स, वाराणसी

10 कवि,श्रीकृष्ण, मन्दारमरन्दचम्पू (माधुर्यरंजनीव्याख्या समेत)1895,काव्य माला 52,निर्णयसागर मुद्मालय,मुम्बई